वजूद का बोझ : तीन कहानियाँ

ओमा शर्मा

वजूद का बोझ : तीन कहानियाँ

https://www.hindiadda.com/vajud-ka-bojh-teen-kahaniyan/

एक : संकट का संपर्क

बात चाहे खुद से की जा रही एक विचित्र शरारत से शुरू हुई थी लेकिन थोड़ा रुककर सोचने से उन्हें पता लगने लगा कि बात इतनी गई-गुजरी और महत्वहीन नहीं है जितनी ऊपर-ऊपर से लगती है।

हाँ, तो बात नव वर्ष की डायरी के उस कॉलम को भरने की थी जिसमें लिखा था 'व्यक्ति विशेष जिसे संकट के समय संपर्क करना हो।' अगर दो-चार लोगों के नाम लिखने की बात होती तो शायद दिक्कत नहीं आती। वे आला अफसर थे। संगी-साथियों के अलावा कुछ दूसरे विभागीय मित्र उनके थे। कुछ अच्छे बिजनेस फ्रेंड्स भी। फिर अपने अड़ौस-पड़ौस में भी उठना-बैठना था। अनौपचारिक रूप से भी कम लोगों की आवाजाही नहीं थी उनके यहाँ।

लेकिन जब वे छँटनी करने लगे तो...

नरेश चतुर्वेदी उनका पड़ोसी ही नहीं, बेचमेट भी था, लेकिन दोनों की पत्नियों में चल रही अलिखित घोर अदावत और ईर्ष्या के कारण, वे ठोककर नहीं कह सकते थे कि किसी विकट परिस्थिति में वह दौड़ा चला आएगा। विभाग के एक भूतपूर्व बॉस की मृत्यु पर उसे साथ लेकर चलने का सुझाव जब उन्होंने दिया था तो उसने पूरी निर्ममता से अपनी अनुपलब्धता पेश कर दी थी। 'वैसे भी जो जीते-जी निहायत टुच्ची बातों पर एडवर्स टिका गया, उसके यहाँ जाकर स्वाँग क्या रचना।' इस तर्कसंगत दलील ने गोया नरेश का गिरेबाँ ही उघाड़ दिया था।

राजेंद्र पडगाँवकर उनसे था तो एक-दो वर्ष कनिष्ठ, लेकिन पारिवारिक उठना-बैठना उससे अच्छा था। हाँ, चीजों को जाँचने-परखने का उसका नजरिया जरूर बचकाना था। सूचना मिलने पर फोन पर ही पत्नी को कहेगा 'क्या कह रही हैं आप भाभीजी, लेकिन गाड़ी देखकर क्यों नहीं चला रहा था, कल थोड़ी 'लगा' ली थी क्या अब थोड़ी देर में मुझे तो अपने साढ़ू-साली को स्टेशन लेने जाना है, पहली बार आ रहे हैं, मैं उसके बाद फौरन पहुँचता हूँ।'

अलका प्रजापति दूसरे विभाग में थी। हम दोनों ही डेप्यूटेशन पर गृह मंत्रालय में साथ थे। बहुत निष्ठावान और विश्वसनीय महिला। मानसिक धरातल पर उनके सबसे करीब। लेकिन वे जानते थे कि अपने टिंकू-पिंकू के चलते वह कुछ करना भी चाहे, तब भी नहीं कर पाएगी। सुबह बच्चों का स्कूल, दिन भर दफ्तर, शाम को होमवर्क, कामकाजी महिलाओं का घर की चकरघिन्नी पर जुटे रहना उन्हें इसी कारण बहुत

दकियानूसी-सा लगता है। किसी की मदद तो कोई तब करे, जब अपने जंजालों से जुदा होकर सोच पाए।

व्यावसायिक दोस्तों का तो आलम ही यह था कि लगभग हर वर्ष ही नए बनते थे। उनके पास पड़ी फाइलों के अनुरूप। असीम श्रीवास्तव, जिसे उन्होंने अपवाद समझा था, पिछली दीवाली पर, संबंधित काम न होने के अभाव में, कन्नी काट गया था। उनकी पूरी जमात बीसेक मिनट अस्पताल में अपनी मौजूदगी जताकर 'कोई काम हो तो' की औपचारिकता निभा सकती थी। इससे अधिक कुछ भी नहीं।

उनकी अपने कस्बे से सैकड़ों कोस दूर तैनाती थी, अतः सभी बंधु-बिरादर और रिश्तेदार पीछे छूट गए थे। दूरियाँ इतनी हो गई थीं कि पहुँचते-पहुँचते एक दिन और रात बिगड़ जाते थे।

वे जानते थे कि हर दो-एक महीने में किसी के साथ पिक्चर देखना, जन्मदिन मनाना, खाना खाना या पिकनिक पर जाना एक बात है और किसी निष्कपट और संकटकालीन मदद की सोचना निहायत दूसरी। वे किसी को दोष नहीं दे रहे थे, मगर हकीकत यही थी कि सामाजिकता के दबाव में रात गई, बात गई, ज्यादा हो रही थी।

डायरी का वह खुला हुआ अदना-सा कॉलम अब किसी हीनताग्रस्त असुरक्षा को पनाह देने लगा था। कोई भी एक नाम उस विचित्र कॉलम की शर्तों पर खरा न उतर पाने पर जैसे उनके पैरों की जमीन लगातार स्व-खलित हो रही थी। यह चोट और चुनौती उसके खालिस अहम से अधिक विश्वास पर थी।

वहाँ उन्होंने लिखा : किसी को नहीं।

दो : चौरासी लाखवाँ जन्म

हादसे से पूर्व उनकी जिंदगी में सब कुछ तयशुदा ही था। सुबह उठकर बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करना, थोड़ी वर्जिश, चाय के साथ अखबार, नहाना, नाश्ता और फिर दफ्तर। दिनभर दफ्तर की रवायत। शाम को चाय, बच्चों का होमवर्क, थोड़ा टीवी और पत्नी के साथ थोड़ी सी गुफ्तगू। रिमोट पर अपने कब्जे के कारण उनकी उँगलियाँ किसी आततायी की तरह टीवी से मनमानी करती थीं, मगर बच्चों के रात के डिस्कवरी चैनल के साथ छेड़छाड़ की हिम्मत फिर भी नहीं सिमट पाती थी। इसी प्रक्रिया में उन्होंने महसूस किया कि यह सौदा कोई घाटे का नहीं था। जानवरों की

दुनिया की एक से एक अद्‌भुत और रोचक जानकारी उन्हें बच्चों के प्रति आश्वस्त करती तो वहीं दिनभर की थकान और निराशा को शांत कर देती।

अलबत्ता इस बात से इत्तफाक उनकी समझ से परे ही बना रहा कि प्रकृति ने एक जीव को दूसरे का आहार या आश्रित क्योंकर बनाया। प्रकृति यदि माँ है तो वह न्याय की किस कलम के तहत एक जीव को दूसरे की जान लेने पर आमादा कर सकती है। मेंढक को साँप, साँप को गीदड़ और गीदड़ को चीते द्‌वारा चबाया जाना तो समझा भी जाता पर बकरियों और खरगोशों का, निश्छल आचरण के बावजूद बधित होना उनके गले नहीं उतरता था। उधर कैमरा पूरी पेशेवर क्रूरता से उनके वध किए जाने से लेकर दबोच दिए जाने तक की प्रक्रिया को किसी खेल या सीरियल की तरह दिखाता जाता था। उनके गले के पिछवाड़े से हूक निकलती, प्रभु कभी बकरी नहीं बनाना, प्रभु कभी... इस सिलसिले में पता नहीं कौन-कौन से जीव-जीवन रोज जुड़ते रहते। चौरासी लाख जन्मों के चक्र की अनिवार्यता जब उनकी सोच को फुरफुराती तो अपने आदमी होने के सौभाग्य को वे दिल की अतल गहराइयों में डूबकर महसूस करते। बिजली, कंप्यूटर, रॉकेट और चिकित्सा की अधुनातन उपलब्धियों से लेकर आदमी की हर विषम चुनौती से मुकाबला करने और अंततः विजयी होने की फितरत उनके अंदर इंसान के तमाम योनियों में सर्वश्रेष्ठ होने का बोध जगाती चलती।

मगर हादसा भी 'डिस्कवरी' पर ही हुआ। पता नहीं किस सनक के तहत एक रोज उसमें इथयोपिया के सूखे से पीड़ित कंकाल स्त्री-पुरुष दिखे (कैमरे की उसी चौकन्नी बारीकी के बरक्स) तो दूसरे रोज बोस्निया के युद्‌ध से अंग-प्रत्यंग कटे बच्चे और बूढ़े। पैंतालीस डिग्री तापमान में डामर की सड़क पर निर्वस्त्र भीख माँगते बच्चों की गुहार और अपनी आया को दिन भर काम करने के बावजूद शराबी पति द्‌वारा आए दिन पीटे जाने का भी उन्हें भान हो आया। कुछ रोज पूर्व रेलयात्रा के दौरान एक सद्‌यजन्मा बच्चे को सूप में रखकर भीख माँगती औरत का अक्स आज फिर जायका खराब कर रहा था। हाँ, आज यकबयक सभी चीजें एक साथ सिर उठाने लगीं।

उन्हें माँ प्रकृति की गलती क्षम्य लगने लगी और चौरासी लाखवें जन्म की जिजीविषा एकदम लाचार-निरुपचार।

तीन : लाल किले की औकात

पिछली बार जब सपरिवार दिल्ली घूमने गया था तो छोटे बच्चों की बेहतर देखभाल के लिए मैंने अहमदाबाद में अपने घर पर काम करनेवाली अंशकालिक आया को भी साथ चलने को राजी कर लिया। उसकी बदौलत हम पति-पत्नी को दिल्लीवासी अपने

यार दोस्तों और संबंधियों से मिलने-जुलने में काफी सहूलियत रही। अहमदाबाद वापसी के एक रोज पूर्व हमने तय किया कि जब वह हमारी खातिर दिल्ली आई ही है तो क्यों न उसे दिल्ली की खास चीजों से रूबरू करा दिया जाए। इसमें मुख्यतः शामिल थी थोड़ी बहुत खरीददारी और ऐतिहासिक महत्व की मानी जानेवाले इमारतों की सैर। कुतुबमीनार को तो उसे क्यों देखना था, क्योंकि वह तो स्वयं झूलती मीनारों के शहर में रहती है। मैं उसे लाल किला दिखाने ले गया।

'ये रहा लाल किला, जहाँ से हर साल प्रधानमंत्री भाषण देते हैं।' उस भव्य प्राचीन फैलाव के निकट पहुँचकर मैंने उसे बताया।

मेरी बात को उसने कोई खास तवज्जो नहीं दी। किले की दीवारों या फैलाव के प्रति कोई चकित भाव भी नहीं उभरा, तृप्त भाव तो एकदम ही नहीं। मुझे थोड़ी हैरत हुई। कहीं हल्की-सी कोफ्त भी।

चुप्पी तोड़ते हुए उसने पूछा, 'भइया, यहाँ चोर बाजार भी है ना?'

मैं समझ गया। वह हर रविवार लाल किले के पिछवाड़े लगनेवाले कबाड़ी बाजार की ही बात कर रही थी। साथ ही यह भी कि उसने बड़ी शाइस्तगी से शाहजहाँ के मशहूर लाल किले को, जहाँ से भाषण देने के लिए हर नेता उत्सुक रहता है, उसकी औकात दिखा दी थी।

https://www.hindiadda.com/vajud-ka-bojh-teen-kahaniyan/